© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 06 Issue: 04 | July-September 2015

भारत में शिक्षा का प्रसार (1913-1966) : एक विवेचना

चेतन कुमार, ग्राम एवं पो० प्रह्लादपुर , जिला मुज्जफरपुर , बिहार

सार

प्रसार शिक्षा में में दो शब्द है प्रसार और शिक्षा इन दोनों शब्दों को उलट दिया जाए तो ये हो जाते हैं शिक्षा प्रसार शिक्षा का प्रसार अर्थात् तत्पुरुष समास। इस प्रकट प्रसार शिक्षा उस प्रकर की शिक्षा हुई जो शिक्षा का प्रचार-प्रसार करतीं है। अगर इस पद को और अधिक विश्लेषण करे तो यह स्पष्ट होता कि इसमें शिक्षा देने वाले स्वयं विभिन्न स्थानों पर विभिन्न व्यक्तियों के बीच जाकर विभिन्न परिस्थितियों एवं पर्यावरणों में शिक्षा-का-प्रचार प्रसार करता है जबकि सामान्यता शिक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा रखने वाले को अर्थात् विद्यार्थी या शिक्षार्थी को स्वयं ही उस व्यक्ति या संस्था के पास जाना होता है और उस परिस्थिति में रहना होता है जिस स्थान पर वह व्यक्ति या संस्था। जिस परिस्थिति में शिक्षा उपलब्ध कराती है। इस प्रकार शिक्षा का यह भी अर्थ हुआ कि यह कोई संस्थागत शिक्षा नहीं है वरन यह औपचारिक शिक्षा है जबकि दूसरे प्रकार की शिक्षा औपचारिक शिक्षा होती है।

© iJRPS International Journal for Research Publication & Seminar

मुख्य शब्द : शिक्षा, पद, परिस्थितियों, पर्यावरणों, व्यक्ति, औपचारिक आदि।

प्रस्तावना

प्रसार शिक्षा का शाब्दिक अर्थ "शिक्षा को फैलाना" अर्थात् किसी किये जा रहे कार्य को और अधिक सफलतापूर्वक करने के तरीकों का प्रचार-प्रसार जनता के बीच करना। व्यवहारिक रूप में प्रसार शिक्षा का अर्थ उन सभी प्रकार का कार्यो से है जो सरकार द्वारा जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के दृष्टिकोण से उनके सहयोग से उनके जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्र विशेषकर गृह, कृषि एवं उद्योग आदि से लगाया जाता है।

प्रसार शिक्षा का उद्देश्य

- प्रसार शिक्षा का प्रमुखलम एवं मूलभूत उद्देश्य है ग्राम्य जन जीवन में सर्वोमुखी विकास लाना।
- ग्राम्य जनता को यह बतलाना कि भूमि, जल एवं पशुधन जैसे प्राकृतिक मलिक साधन जिस परिमाण में उन्हें उपलब्ध हो उसका सर्वोत्तम उपयोग वे किस प्रकार करें जिससे उनके पारिवारिक में आय व संतोषजनक वृद्धि हो।

- यह बतलाना की वे अपनी परिवारिक योजनायें का निर्धारण कार्यावयन एवं मूल्यांकन किस प्रकार करे जिससे की उनका व्यक्तिगत एवं पारिवारिक रहन सहन का स्तर ऊँचा हो।
- अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति करने लायक खादयाहार स्वयं उत्पादित कर सकने के योग्य होने, खान- पान के स्तर को बेहतर बनाने एवं उत्तम जीवन जीने का अभ्यस्त होने के लिए कृषकों को उत्प्रेरित करना
- ग्राम्य जन जीवन के प्राकृतिक सामाजिक मनोरंजक बौधिक एवं अध्यात्मिक स्तर को अधिकाधिक ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करना।
- ग्राम जीवन के सौंदर्य को परखने उसे जीवन में उपलब्ध अवसरों का अधिकाधिक लाभ उठाने तथा ग्राम्य जीवन के विशेषाधिकारो विशेषसेंदेहकारों के प्रति अधिकाधिक रूप से जागरूक रहने के लिए ग्राम्य कृषक समुदाय को उत्प्रेरित करना।

प्रसार शिक्षा की आवश्यकता:

आगर हम अपने देश के 'कृषजों की तुलना जर्मनी, रूस तथा अमेरिका आदि जैसे विकसित देशों के कृषकों से करें तो हम पायेगे कि दोनों मैं बहुत अधिक अन्तर है। हमारे देश मैं आज भी विधियों को ही अपनाये हुए हैं। आज भी हमारी कृषि मौसम पर अत्यधिक निर्भर है। वर्षा का न होना, वर्षा का कम होना, वर्षा का समय पर न होना आदि जैसे विभिन्न कारणों से हमारी कृषि आज ओी प्रभावित हो रही है दूसरी ओर विज्ञान के तीव्र विकास ने कृषि के नये-नये आयामों को प्रस्तुत किया है। 'कृषि के क्षेत्र मैं दिनानुदिन प्रगति होती जा रही है। नये-नये प्रकार के उपकरणों, उन्नत किस्म कै बीजों, उन्नत प्रकार के खादों एवं कीटनाशकों, नये-नये प्रकार के फसल चक्र, उत्पादन की नयी-नयी विधियों, उत्पादित खादयाहारों के अंडारन एवं परीक्षण की तकनीकों को विकसित किया गया है। पर इसमें से अधिकांश जान अब औ हमारे देश में कृषि वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं तथा शोध संस्थानों एवं प्रयोगशालाओं तक ही सीमित है जबकि विकसित राष्ट्रों में कृषकों दूवारा व्यावहारिक तकनीक उपयोग में लायी जा रही है।

इसलिए आज भी हमारे देश मैँ प्रसार शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता है। प्रसार शिक्षा कार्यकर्ता शोध संस्थानों, प्रयोगशालाओं एवं कृषि विश्वविद्यातरयौँ में उपलब्ध अद्यातन कृषि संबंधित ज्ञान की सुदूर ग्रामीण क्षत्रो में खेतों मैं काम कर रहे किसानों तक पहुँचाने के सशक्त माध्यम होते हैं। प्रसार

शिक्षा का प्रमुखतम एवं मूलभूत उद्देश्य ही है ग्रामीण जनता को विकास, समृद्धि एवं सुख के पथ पर अग्रसर करना। भारत के गाँव में आज इन तोनों की अत्यधिक आवश्यकता है।

यही कारण है कि आज प्रसार शिक्षा की भी इतनी अधिक आवश्यकता है। प्रसार शिक्षा भारत जैसे विकासशील देशों तथा विश्व के भिन्न-भिन्न अविकसित देशों में प्रसार शिक्षा का आज अत्यधिक महत्व है क्योंकि प्रसार शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में त्वरित विकास लाने के एक सार्थक माध्यम के रूप में कार्य कर रही है। प्रसार कार्यकर्ता गाँवों में घूमघूमकर कृषकों के साथ गहन सम्पर्क स्थापित कर एवं प्रयोगशालाओं तक पहुँचाते है और पुनः उन समस्याओं का निदान पाकर, उन्हें समझकर उन निदानों को खेतों में कार्य कर रहे कृषकों तक पहुँचाते हैं। वे कृषकों को उन निदानों का व्यावहारिक उपयोग करने की विधियों को समझाते हैं। प्रसार शिक्षा की विभिन्न योजनाओं के तहत वैज्ञानिक ढंग से खेती-बाडी करने, भूमि, जल तथा पशुधन जैसे उपल्ब्ध प्राकृतिक साधनों से सर्वाधिक लाभ प्राप्त करने की वैज्ञानिक विधियों को अपनाने का शिक्षण-प्रशिक्षण दिया जाता है प्रसार शिक्षा ग्रामीण जनता विशेषकर कृषक वर्ग को अपने जीवन स्तर ऊँचा उठाने में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक सहयोग प्रदान करता है। यह सहयोग, शिक्षण उनके दैनिक जीवन में दिया जाने वाला सहयोग होता है। यह सहयोग एवं शिक्षण-प्रशिक्षण उन्हें अपने खेत-खलिहान, घर-परिवार, सगे-सम्बन्धी, अपने समुदाय के बीच उनकी सुविधा के अनुसार उन्हें उपलब्ध कराया जाता है। यह शिक्षा वे स्वेच्छा से अपना विकास करने की कामना से प्रेरित होकर ग्रहण करते है।

प्रसार शिक्षा के सिद्धांत हैं

1. **हितों एवं आवश्यकताओं का सिद्धांत:** प्रसार शिक्षा प्रमुख रूप से ग्रामीण जनता के हितों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति से जुड़ा हुआ होता है। अतः अगर कभी प्रसार शिक्षा कार्य-कर्ता एवं ग्रामाण जनता के बीच हितों एवं आवश्यकताओं के संदर्भ में दृष्टिकोण में अन्तर हुआ तो कार्यकर्ता को ग्रामीणों के दृष्टिकोण को ही मानना होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ग्राम्य जन जिसे अपना हित एवं आवश्यकता मानते हों प्रसार शिक्षा कार्यकर्ता को उसी हित एवं आवश्यकता को प्राथमिकता देनी होगी क्योंकि वही हित एवं आवश्यकता ग्राम्य जनों की अनुभूत हित एवं आवश्यकता है।
2. **सांस्कृतिक विभिन्नताओं का सिद्धांत:** हमारा राष्ट्र सांस्कृतिक विभिन्नताओं का देश है यहाँ आवश्यकता इस बात की है दस विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरुपों एवं प्रकार वाले शिक्षा कार्यक्रम अपनाये जायें। दूसरे शब्दों में यह कहा

जा सकता है कि एक स्वरूप एवं प्रकार वाला प्रसार शिक्षा सकता है अर्थात् किसी क्षेत्र में लागू किया जाने वाला प्रसार शिक्षा कार्यकम उस क्षेत्र की संस्कृति के अनुरूप होना चाहिए।

3. **सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धांत:** प्रसार शिक्षा कार्यक्रमों को इतना प्रभावी होना चाहिए जिससे कि वे उस क्षेत्र के जिसमें वे लागू किये जाते हैं, सांस्कृतिक स्वरूप में महत्वपूर्ण विकासात्मक परिवर्तन ला सकें। ऐसा होना प्राकृतिक भी है क्योंकि जिस क्षेत्र में प्रसार शिक्षा लागू की जाती है उस क्षेत्र की जनता है सोचने का स्तर, रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठता है, उनकी कार्य क्षमता एवं कुशलता में वृद्धि होती है सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण में विकासात्मक परिवर्तन होता है।
4. **जनता के स्तर पर संगठन का सिद्धांत:** प्रसार शिक्षा कार्यक्रमों का नियोजन, कायन्वियन एवं मूल्यांकन जनता के स्तर पर होना चाहिए। प्रसार कार्यक्रमों को लागू करने वाले संगठन के निर्माण में उनकी, जिनके लिए इसकी संरचना की जा रही है। अर्थात् ग्रामीण जनता की सीधी भागीदारी होनी चाहिए। प्रसार शिक्षा कार्यक्रमों को उनपर उपर से थोपा नहीं जाना चाहिए। इसकी रूपरेखा निचले स्तर पर ही तैयार की जानी चाहिए। एक ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप वाले समूह हो सकते हैं। प्रसार शिक्षा को उन सभी स्वरुपों एवं प्रकार का ध्यान रखना, उनके शिक्षा संगठन को जनाधार प्राप्त होना तथा जनता के स्तर से इसका उदभूत होना आवश्यक है

भारत में शिक्षा के प्रसार का इतिहास

भारत में प्रसार शिक्षा का प्रारम्भ उन्नीमसवीं सदी के अन्तिम दशक में तब हुआ जब सन् 1888 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भूमि सुधार ऋण 315 तथा कृषि ऋण कानून लागू किया हुआ यह कि संपूर्ण उन्नीमसवीं सदी में कुल 33 बार अकाल पड़ा जिसमें से सन् 1885 से लेकर 1901 तक 18 बार अकाल पड़ा। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को एक जाँच कमीशन बैठाने पर बाध्य होना पड़ा। इस कमीशन ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू किये जाने की अनुशंसा की। इस कमीशन के अनुशंसा के ही आधार पर उपर्युक्त वर्णित दोनों कानून तथा 1888 के भूमि सुधार ऋण काननू तथा कृषि ऋण कानून लागू किये गये।

शिक्षा नीति पर सरकारी प्रस्ताव, 1913

1906 में प्रगतिशील रियासत बड़ौदा ने अपनी पूरी रियासत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रारंभ कर दी। राष्ट्रवादी नेताओं ने सरकार से पूरे ब्रिटिश भारत में ऐसी व्यवस्था करने का आग्रह किया। शिक्षा नीति पर 1913 के अपने प्रस्ताव में सरकार ने अनिवार्य शिक्षा का उत्तरदायित्व लेने से तो इंकार कर दिया किंतु उसने अशिक्षा को दूर करने की नीति की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली तथा प्रांतीय सरकारों से आग्रह किया कि वे समाज के निर्धन एवं पिछड़े वर्ग को निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा देने के लिये आवश्यक कदम उठायें।

सैडलर विश्वविद्यालय आयोग (1917-19)

वर्ष 1917 में सरकार ने लीड्स विश्वविद्यालय के उप-कुलपति डा. एम.ई.सैडलर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया, जिसका कार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं का अध्ययन कर इसकी रिपोर्ट सरकार को देना था। यद्यपि यह आयोग केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही सम्बद्ध था, किंतु इसकी सिफारिशें भारत के अन्य विश्वविद्यालयों के संबंध में भी सही थीं। इस आयोग ने प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक की शिक्षा व्यवस्था का गहन अध्ययन किया।

द्वैध शासन के अधीन शिक्षा

1919 के माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत शिक्षा विभाग, प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित कर दिया गया तथा सरकार ने शिक्षा संबंधी मसले पर सीधे तौर पर रुचि लेनी बंद कर दी। यद्यपि सरकार द्वारा शिक्षा विभाग को 1902 से दी जा रही सहायता उदारतापूर्वक जारी रही।

हर्टोग समिति, 1929

शिक्षण संस्थाओं की संख्या में अंधाधुंध वृद्धि के कारण शिक्षा के स्तर में गिरावट आने लगी। शिक्षा में हुये विकास के संदर्भ में रिपोर्ट देने के लिये वर्ष 1929 में सर फिलिफ हर्टोग की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गयी।

मूल शिक्षा की वर्धा योजना, 1937

अक्टूबर 1937 में, कांग्रेस ने शिक्षा पर एक राष्ट्रीय सम्मेलन वर्धा में आयोजित किया। इस सम्मेलन में पारित किये प्रस्तावों के अंतर्गत, आधार शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति बनाने के लिये जाकिर हुसैन की

अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इस समिति के गठन का मूल उद्देश्य था गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना।

शिक्षा की सार्जेन्ट योजना

वर्ष 1944 केन्द्रीय शिक्षा मंत्रणा मंडल ने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना तैयार की जिसे, सार्जेन्ट योजना के नाम से जाना जाता है। सर जान सार्जेन्ट भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार थे। इस योजना में 40 वर्ष में देश में शिक्षा के पुनर्निर्माण का कार्य पूरा होना था तथा इंग्लैण्ड के समान शिक्षा के स्तर को प्राप्त करना था। यद्यपि यह एक सशक्त व प्रभावशाली योजना थी किंतु इसमें इन उपायों के क्रियान्वयन के लिये कोई कार्ययोजना नहीं प्रस्तुत की गयी थी। साथ ही इंग्लैण्ड जैसे शिक्षा के स्तर को प्राप्त करना भी भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल न था।

स्वतंत्रता के पश्चात

राधाकृष्णन आयोग 1948-49

नवंबर 1948 में राधाकृष्णन आयोग का गठन देश में विश्वविद्यालय शिक्षा के संबंध में रिपोर्ट देने हेतु किया गया था। स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में इस आयोग की रिपोर्ट का अत्यंत महत्व है। इस आयोग ने निम्न सिफारिशें की थीं-

- विश्वविद्यालय पूर्व (pre-university) 12 वर्ष का अध्ययन होना चाहिये।
- उच्च शिक्षा के मुख्य तीन उद्देश्य होने चाहिये
  (i) सामान्य शिक्षा (ii) सरकारी शिक्षा, एवं (iii) व्यवसायिक शिक्षा

कोठारी शिक्षा आयोग 1964-66 Kothari Commission 1964-1966

जुलाई 1964 में डाक्टर दी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय आयोग का गठन किया गया। इसका कार्य शिक्षा के सभी पक्षों तथा चरणों के विषय में साधारण सिद्धांत, नीतियों एवं राष्ट्रीय नमूने की रुपरेखा तैयार कर उनसे सरकार को अवगत कराना था। आयोग की अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड एवं यूनेस्को के शिक्षा-शास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों की सेवायें भी उपलब्ध करायीं गयीं थी। आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गयी। जिसमें निम्नलिखित तथ्यों पर बल दिया गया-

- 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा।

- शिक्षा के लिये तीन भाषाई फार्मूला-मातृभाषा, हिन्दी एवं अंग्रेजी तथा क्षेत्रीय भाषाओं का विकास।
- राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करना।
- अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा उनके लिये मानक तय करना।
- कृषि तथा औद्योगिक शिक्षा का विकास।
- विज्ञान तथा अनुसंधान शिक्षा का समानीकरण (equalisation)।
- सस्ती पुस्तकें उपलब्ध कराना तथा पाठ्य-पुस्तकों को उत्तम बनाना।

निष्कर्ष

शिक्षा हम सभी के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक उपकरण है। हम जीवन में शिक्षा के इस उपकरण का प्रयोग करके कुछ भी अच्छा प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा का उच्च स्तर लोगों को सामाजिक और पारिवारिक आदर और एक अलग पहचान बनाने में मदद करता है। शिक्षा का समय सभी के लिए सामाजिक और व्यक्तिगत रुप से बहुत महत्वपूर्ण समय होता है। यह एक व्यक्ति को जीवन में एक अलग स्तर और अच्छाई की भावना को विकसित करती है। शिक्षा किसी भी बड़ी पारिवारिक, सामाजिक और यहाँ तक कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी हर करने की क्षमता प्रदान करती है। हम से कोई भी जीवन के हरेक पहलू में शिक्षा के महत्व को अनदेखा नहीं कर सकता। यह मस्तिष्क को सकारात्मक की ओर मोड़ती है और सभी मानसिक और नकारात्मक विचारधाराओं को हटाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

[1] शुक्ला, सी०एम०: शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013

[2] विद्या भूषण एवं सचदेव, डी०आर० : समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद, 2005

[3] 'परणिक्कर, के/एन०: “शिक्षा, आधुनिकीकरण और विकास” परिधक्षय राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, वर्ष 18, अंक 3, दिसम्बर 2011

[4] शिक्षा प्रसार केन्द्र, सनातन धर्म मन्दिर परिसर, हरिसिंह पार्क, न्यू मुल्तान नगर, दिल्ली

[5] शिक्षा प्रसार केन्द्र, समुदाय भवन, पेकिट बी, दिलशाद गार्डन,

[6] शिक्षा प्रसार केन्द्र, जिला कारागार, रोहिणी, दिल्ली।

[7] मिश्रा, ऊषा: शिक्षा का समाजशास्त्र, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012

[8] शिक्षा प्रसार केन्दू, नगली सकावती, आनंद विहार, नई दिल्ली

[9] शिक्षा प्रसार केन्द्र, एम०सी०डी० समुदाय भवन समीप मृगनयनी चौक, दिलशाद कालोनी, दिल्ली।

[10] शिक्षा प्रसार केन्द्र, मुंडका हिरंकूदना, दिल्ली

[11] रुहेला. एस0पी0: भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2012